संगीत शिक्षा और नई टैक्नोलॉजी

डा० रीना गुप्ता
असिस्टेंट प्रोफेसर, संगीत विभाग,
इस्माईल नेशनल महिला (पी.जी.) कालिज, मेरठ

'गीतं वाद्यं च नृत्यं त्रयं संगीत मुच्यते', अर्थात गीत, वाद्य तथा नृत्य इन तीनों कलाओं का सामूहिक नाम संगीत है। प्राचीन काल से ही संगीत समाज तथा संस्कृति का अभिन्न अंग है। भारतीय मनीशियों ने इसे हृदयगत भावों को प्रकट करने का सफल साधन मानते हुये धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति का सर्वोत्तम उपाय माना है।

इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये इसकी विधिवत शिक्षा का होना आवश्यक है। संगीत शिक्षण, अभ्यास व अनुभव से युक्त वह प्रकिया है, जिसके माध्यम से शिक्षक शिष्य की कमियों को दूर करता है। शिक्षा का सामाजिक, नैतिक तथा बौद्धिक दृष्टि से व्यापक अर्थ है। जब हम संगीत–शिक्षा की बाते करते है तो उसका अर्थ शास्त्रीय संगीत शिक्षा से ही होता है।

संगीत शिक्षा या सीखने का अर्थ इसें कियात्मक व शास्त्रीय रूप के सभी पहलुओं के अध्ययन से है। स्वर, लय और ताल का ज्ञान, स्वरों की बारीकियां, रागों का विस्तृत ज्ञान, ये ऐसी मूल बाते है, जिनका ज्ञान होने पर ही सच्चे अर्थों में संगीत सीखना कहा जा सकता है। नई टैक्नालॉजी के संदर्भ में संगीत–शिक्षा समझने के लिये सबसे पहले इस शिक्षा का ऐतिहासिक स्वरूप और उसके वर्तमान स्वरूप की चर्चा करना आवश्यक है।

संगीत शिक्षा या शिक्षक के इतिहास पर दृष्टिगत करने से इसकी शिक्षण प्रणाली का ऐतिहासिक स्वरूप स्पष्ट होता है। वैदिक काल से मध्ययुग तक संगीत शिक्षा गुरूमुख से दी जाती थी जिसे 'गुरू शिष्य परम्परा' कहा जाता था। प्रशिक्षण देने के दो रूप मुख्यतः प्रचलित प्रचलित रहे। प्रथम, पिता द्वारा पुत्र को और दूसरा गुरू द्वारा शिष्य को प्रशिक्षण। व्यैक्तिक रूप से गुरू–मुख से सामने बैठकर शिष्य शिक्षा ग्रहण करता था, जिसे सीना–ब–सीना तालीम भी कहा जाता है। उस समय स्वरलिपि बद्ध करने की व ध्वनि अंकित करने की कोई तकनीक उपलब्ध नहीं थी, जिससे पाठ को संग्रहित किया जा सके। सब कुछ मौखिक परम्परा के द्वारा ही सीखना–सिखाना था, फिर चाहे मन्दिर संगीत हो या दरबारी संगीत।

मध्य युग में भी संगीत– शिक्षा की विधि व रीति व्यक्तिगत शिक्षण के अनुरूप ही रही। जिसमें समय व ज्ञान क्षेत्र को कोई बंधन नहीं रहता था। गुरू का उद्देश्य शिष्य को निपुण एवं श्रेष्ठ कलाकार बनाने का प्रत्यन रहता था।

इसी दौरान संगीत–शिक्षा में घराने की नीवं पड़ी जिसके अंतर्गत कलाकार अपने संगीत, अपने ज्ञान को छुपा कर रखने लगे। किसी अन्य जाति के लोगों को वे नहीं सिखाते थे। इनका संगीत पीढ़ी दर पीढ़ी चला करता था। अगर कोई निःसंतान हो तो उसका संगीत उसी के साथ समाप्त हो जाता था। ख्याल गायन के क्षत्र में ग्वालियर, आगरा, जयपुर, किराना, रामपुर, तबले में पंजाब, अजराड़ा, फर्रूखाबाद, बनारस, कत्थक में लखनऊ, जयपुर, सितार में सेनिया, इमदादखानी आदि घराने या बाज कहलाने लगे। वास्तव में ये सभी घराने मुगलयुग के अन्तिम चरण में ही अस्तित्व में आये है।

''घराना'' शब्द से ध्वनित होता है घर। अर्थात घर से घराना शब्द निर्मित हुआ है जिस प्रकार हर एक घर–परिवार का अपना एक अलग रहन–सहन होता है, जिसका उसकी पहचान होता है, उसी तरह संगीत में हर घराने की एक विशिष्ट शैली रही। स्वर लगाव का तरीका, प्रस्तुतिकरण का देश, लय का चुनाव, बोल–बाँट का ढंग सब भिन्न–भिन्न होने के कारण वे अस्तित्व में आये और संगीत की शिक्षा घरानों के नियमों व रीतियों के अनुरूप दी जाने लगी।

मुगल साम्राज्य में कलाओं को राज्याश्रय प्राप्त होने से वे विकसित होती रही, किन्तु अंग्रेजी भासन काल में ऐसा न होने से संगीत कला समाज में निकृष्ट श्रेणी के माने जाने वाले व्यवसायी स्त्री पुरूषों में पहुंच गई। इस कारण भले घरों में संगीत का प्रवेश निशिद्ध माना जाने लगा। तत्कालीन सामाजिक व राजनैतिक मांग के अनुसार बीसवीं सदी में संगीत शिक्षा पद्धति में युगान्तकारी परिवर्तन आया। संगीत को समाज में पुनः प्रतिष्ठित करने के लिये पण्डित विश्णु नारायण भातखंडे व पं० विष्णु दिगम्बर पलुस्कर ने अथक प्रयत्न किये। संगीत कला को आम आदमी तक पहुँचाने के उद्देश्य की पूर्ति हेतु पं० भातखंडे ने देश भर के गायकों, वादकों से बंन्दिशे एकत्रित करके उनकी स्वरलिपि तैयार की और शास्त्र रचना कर उन्हें प्रकाशित किया। जो आज हमें ''भातखंडे क्रमिक पुस्तक मालिका (छः भागों में) व भातखंडे संगीत शास्त्र (चार भागों में) के रूप में उपलब्ध है। सार्वजनिक संगीत शिक्षा के प्रचार हेतु इन विद्वानों ने जगह–जगह संगीत विद्यालय, महाविद्यालय खोले

जैसे इलाहाबाद की प्रयाग संगीत समिति, चंडीगढ़ की प्राचीन कला केन्द्र, मिरज की अखिल भारतीय गांधर्व महाविद्यालय मण्डल आदि, जिनका उद्देश्य संगीत शिक्षा देना, साथ ही डिप्लोमा व डिग्री प्रदान करना रहा। इसी समय से पाठयक्रम–प्रकिया व उपाधि देने की प्रकिया संगीत जगत में शुरू हुई। आज संगीत शिक्षा का स्वरूप विद्यालय, महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में ऐच्छिक विषय के रूप में है, जहां सामूहिक रूप से शिक्षा दी जा रही है। इस प्रकार जहां एक ओर संगीत शिक्षा में विद्यालयीन शिक्षा का प्रादुर्भाव हुआ, वहीं दूसरी ओर गुरू शिष्य परम्परा से आज भी संगीत शिक्षण जारी है।

बीसवीं सदी के आरम्भ में विज्ञान व टेक्नोलॉजी के विकास क्रम में संगीत स्वरलिपि, ध्वनि मुद्रण व ध्वनि संग्रह के क्रान्तिकारी शोध ने भविष्य की विस्मयकारी संभावनाओं की नींव डाली और संगीत शिक्षा व संगीत प्रदर्शन के लिये नये मार्ग खोल दिये। वैज्ञानिक टेक्नोलॉजी के उपयोग से संगीत अब संग्रहीत होने लगा, एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने लगा। संगीत, अब स्वरलिपि पुस्तकों के माध्यम से, ध्वनि मुद्रिकाओं के माध्यम से, अध्ययन के लिये दूर बैठे विद्यार्थियों को भी उपलब्ध होने लगा। संगीत शिक्षा में यह एक क्रांतिकारी घटना थी।

आज के वैज्ञानिक युग में इलेक्ट्रानिक्स टेक्नोलॉजी की नवीन से नवीन एवं अत्याधुनिक इलेक्ट्रानिक ध्वन्यंकन उपकरणों ने संगीत की अपार सहायता की है। वैज्ञानिक टेक्नोलॉजी के विकास ने ग्रोमोफोन, रेडियो, टेलीविजन, कैसेट प्लेयर, वीडियों एवं आडियों, सीडी आदि उपकरण उपलब्ध करवा दिये जिनके द्वारा अच्छे–अच्छे संगीतज्ञों के गायन–वादन कार्यक्रम को निरन्तर सुनकर उनकी विशिष्टता आत्मसात करने में सुविधा हुई। इसके साथ ही अपनी प्रस्तुतिकरण को भी देख व सुनकर उनकी विशिष्टता आत्मसात् करने में सुविधा हुई। इसके साथ ही अपनी प्रस्तुतिकरण को भी देख व सुनकर स्वयं के दाषों को दूर करने का प्रयत्न किया जा सकता है। संगीत प्रदर्शन में माइक्रोफोन एम्पलीफायर के मदद से संगीत की बारीकियां स्पष्ट रूप से दूर बैठे अगणित श्रोताओं तक पहुंचने लगे। यदि यह सुविधायें मध्यकाल में होती तो तानसेन, बैजूबावरा, स्वामी हरिदास आदि महान संत संगीतकारों का गायन भी आज इन्हीं ध्वनि संग्रह इलेक्ट्रानिक उपकरणों द्वारा पुनः सुनना संभव हो जाता।

शिक्षार्थियों के अभ्यास के लिये अब तो इलेक्ट्रानिक तकनीक के माध्यम से तानपुरा, तबला, हारमोनियम, जैसे वाद्यों की सजीव आवाज भी उपलब्ध हो गई है। जिससे जब चाहें और जहां चाहें वे अपना रियाज कर सकते है। उन्हें अभ्यास के लिये अब संगतकार पर निर्भर नहीं रहना पड़ेगा। संगीतज्ञ इंजीनियरों द्वारा निर्मित इस छोटे एवं सुरीले वाद्य यंत्र के माध्यम से विभिन्न तालों में मनचाहा ठेका प्राप्त किया जा सकता है। इतना ही नहीं वैज्ञानिक टैक्नोलॉजी के माध्यम से अनेक वाद्यों का निर्माण हो रहा है जिससे उनकी टोनल क्वालिटी व रेंज समृद्ध हुई है। सिन्थेसाइजर ने तो सैकड़ों वाद्य यंत्रों को एक ही की–बोर्ड पर संभव बनाकर चमत्कार कर दिया।

आज विभिन्न विश्वविद्यालयों एवं संगीत महाविद्यालयों में इलैक्ट्रानिक आडियो/विजुअल पद्धति की सहायता से संगीत की उच्चतम शिक्षा का कार्य भी किया जा रहा है। सूचना तकनीक और कम्प्यूटर के उपयोग से अब शिक्षण पद्धति में भी परिवर्तन आया है। संगीत शिक्षा को सामान्यजन के लिये मुहैया कराने के लिये इस बात पर जोर दिया जा रहा है कि विश्वविद्यालयों एवं शिक्षा मण्डलों द्वारा कम्प्यूटर तथा सूचना तकनीक का उपयोग कर संगीत शिक्षण की भी दूरवर्ती प्रणाली शुरू करें। पर क्या दूरवर्ती शिक्षा प्रणाली संभव एवं उपयोगी होगी? इसके परीक्षण के लिये "दूरस्थ संगीत शिक्षा" की संभावनायें विशय पर 27 से 29 नवम्बर 2000 को उस्ताद अलाउदीन खां संगीत अकादमी भोपाल ने अंतराष्ट्रीय परिसंवाद का आयोजन किया था जिसमें सभी विद्धानों ने अनेक आशंकाओं के बावजूद इसकी सकारात्मकता को स्वीकार किया। सभी इस बात से एकमत रहे के संगीत शिक्षा कुछ समय तक तो गुरू के सानिध्य में रहकर सीना–ब–सीना तालीम के जरिये आवश्यक है पर उसके बाद गुरू के साथ ही रहा जाये, इसकी आवश्यकता नहीं है। अब आडियो, वीडियों, रिकार्डिंग्स, मल्टीमिडिया, इंटरनेट आदि दूरसंचार माध्यमों के द्वारा संगीत शिक्षा ग्रहण करना संभव होता जा रहा है।

नई टैक्नालाजी से संगीत शिक्षा ग्रहण करने में सुगमता आई है, फिर भी किसी टैक्नोलॉजी के अपनाने से गुरू की या मार्गदर्शक की आवश्यकता नहीं रहेगी, यह संभव नहीं है। गायन हो या वादन, गला कैसे तैयार करना है, साज कैसे हासिल करना है, उसकी तकनीक, हाथों का संचालन, स्वर लगाव, स्वरों की बारीकियां, कैसे रियाज करना चाहिए, क्या रियाज किस ढंग से करना है, इन सब बातों को न तो लिपिबद्ध किया जा सकता है और न ही इन इलैक्ट्रानिक टेक्नोलॉजी के माध्यम से बारीकियों को सीखा जा सकता है। इसके लिये तो गुरू, उस्ताद या मार्गदर्शक के सामने बैठ कर व्यक्तिगत रूप से सीखा जाना ही संभव है। तभी हम संगीत शिक्षा में बाह्य तथा आंन्तरिक दोनों प्रकार के ज्ञान को जान सकेंगे व उचित रूप से सही ढंग से सीख कर लोगों के सम्मुख प्रस्तुत कर सकेंगे।